# 3 श्यामसुन्दरदास

द्विवेदी युग के महान् साहित्यकार बाबू श्यामसुन्दरदास का जन्म काशी के प्रसिद्ध खत्री परिवार में सन् 1875 ई० में हुआ था। इनका बाल्यकाल बड़े सुख और आनन्द से बीता। सर्वप्रथम इन्हें संस्कृत की शिक्षा दी गयी, तत्पश्चात् परीक्षाएँ उत्तीर्ण करते हुए सन् 1897 ई० में बी० ए० पास किया। बाद में आर्थिक स्थिति दयनीय होने के कारण चन्द्रप्रभा प्रेस में 40 रु० मासिक वेतन पर नौकरी की। इसके बाद काशी के हिन्दू स्कूल में सन् 1899 ई० में कुछ दिनों तक अध्यापन कार्य किया। इसके बाद लखनऊ के कालीचरण हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक हो गये। इस पद पर नौ वर्ष तक कार्य किया। इन्होंने 16 जुलाई, सन् 1893 ई० को विद्यार्थी-काल में ही अपने दो सहयोगियों रामनारायण मिश्र और ठाकुर शिवकुमार सिंह की सहायता से 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की। अन्त में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हो गये और अवकाश ग्रहण करने तक इसी पद पर बने रहे। निरन्तर कार्य करते रहने के कारण इनका स्वास्थ्य गिर गया और सन् 1945 ई० में इनकी मृत्यु हो गयी।

## लेखक-एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म**—सन् 1875 ई०।
- **जन्म-स्थान**—काशी (उ० प्र०)।
- **पिता**—देवीदास।
- **माता**—देवकी देवी।
- 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' के संस्थापक।
- **प्रारंभिक शिक्षा**—काशी।
- **संपादन**—नागरी प्रचारिणी पत्रिका।
- **भाषा**—शुद्ध साहित्यिक हिन्दी, सरल तथा व्यावहारिक भाषा।
- **शैली**—विवेचनात्मक, समीक्षात्मक, गवेषणात्मक, भावात्मक।
- **प्रमुख रचनाएँ**—हिन्दी भाषा का विकास, गद्य कुसुमावली, भाषा-विज्ञान, साहित्यालोचक, रूपक रहस्य आदि।
- **साहित्य में स्थान**—मातृभाषा का प्रचार करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान।
- **मृत्यु**—सन् 1945 ई०।
- **साहित्य में पहचान**—आलोचक, निबन्धकार, संपादक आदि। द्विवदी युग के महान् गद्यकार।
- **उपाधि**—अंग्रेजी सरकार से रायबहादुर की उपाधि, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयागराज द्वारा 'साहित्य वाचस्पति' की उपाधि और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा 'डी० लिट्' की मानद उपाधि प्रदान की गयी।

श्यामसुन्दरदास जी अपने जीवन के पचास वर्षों में अनवरत रूप से हिन्दी की सेवा करते हुए उसे कोश, इतिहास, काव्यशास्त्र, भाषा-विज्ञान, शोधकार्य, उपयोगी साहित्य, पाठ्य-पुस्तक और सम्पादित ग्रन्थ आदि से समृद्ध किया, उसके महत्त्व की प्रतिष्ठा की, उसकी आवाज को जन-जन तक पहुँचाया, उसे खण्डहरों से उठाकर विश्वविद्यालयों के भव्य-भवनों में प्रतिष्ठित किया। वह अन्य भाषाओं के समकक्ष बैठने की अधिकारिणी हुई। हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने इन्हें 'साहित्य

वाचस्पति' और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने 'डी० लिट्०' की उपाधि देकर इनकी साहित्यिक सेवाओं की महत्ता को स्वीकार किया।

श्यामसुन्दरदास की प्रमुख कृतियों का विवरण इस प्रकार है—

**निबन्ध**—'गद्य-कुसुमावली' के अतिरिक्त 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' में भी इनके लेख प्रकाशित हुए।

**आलोचना ग्रंथ**—'साहित्यालोचन', 'गोस्वामी तुलसीदास', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'रूपक-रहस्य'।

**भाषा-विज्ञान**—'भाषा-विज्ञान', 'हिन्दी भाषा का विकास', 'हिन्दी भाषा और साहित्य'।

**संपादित रचनाएँ**—'हिन्दी-शब्द-सागर', 'वैज्ञानिक कोश', 'हिन्दी-कोविदमाला', 'मनोरंजन पुस्तकमाला', 'पृथ्वीराजरासो', 'नासिकेतोपाख्यान', 'छत्र प्रकाश', 'वनिता विनोद', 'इन्द्रावती', 'हम्मीर रासो', 'शाकुन्तल नाटक', 'श्रीरामचरितमानस', 'दीनदयाल गिरि की ग्रंथावली', 'मेघदूत', 'परमाल रासो'। आपने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का भी दीर्घकाल तक संपादन किया।

**अन्य रचनाएँ**—'भाषा रहस्य', 'मेरी आत्मकहानी', 'हिन्दी-साहित्य-निर्माता', 'साहित्यिक लेख'।

बाबू श्यामसुन्दरदास की भाषा सिद्धान्त निरूपण करनेवाली सीधी, ठोस, भावुकता-विहीन और निरलंकृत होती है। विषय-प्रतिपादन की दृष्टि से ये संस्कृत शब्दों का प्रयोग करते हैं और जहाँ तक बन पड़ा है, विदेशी शब्दों के प्रयोग से बचते रहे हैं। कहीं-कहीं पर इनकी भाषा दुरूह और अस्पष्ट भी हो जाती है। उसमें लोकोक्तियों का प्रयोग भी बहुत ही कम है। वास्तव में इनकी भाषा का महत्त्व उपयोगिता की दृष्टि से है और उसमें एक विशिष्ट प्रकार की साहित्यिक गुरुता है। इनकी प्रारम्भिक कृतियों में भाषा-शैथिल्य दिखायी देता है किन्तु धीरे-धीरे वह प्रौढ़, स्वच्छ, परिमार्जित और संयत होती गयी है।

बाबू साहब ने अत्यन्त गंभीर विषयों को बोधगम्य शैली में प्रस्तुत किया है। संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ तद्भव शब्दों का भी यथेष्ट प्रयोग करके इन्होंने शैली को दुरूह बनने से बचाया है। इनकी शैली में सुबोधता, सरलता और विषय-प्रतिपादन की निपुणता है, इनके वाक्य-विन्यास जटिल और दुर्बोध नहीं हैं। इनकी भाषा में उर्दू-फारसी के शब्दों तथा मुहावरों का प्रायः अभाव है। व्यंग्य, वक्रोक्ति तथा हास-परिहास से इनके निबंध प्रायः शून्य हैं। विषय-प्रतिपादन के अनुरूप इनकी शैली में वैज्ञानिक पदावली का समीचीन प्रयोग हुआ है। हिन्दी भाषा को सर्वजन सुलभ, वैज्ञानिक और समृद्ध बनाने में इनका योगदान अप्रतिम है। इन्होंने विचारात्मक, गवेषणात्मक तथा व्याख्यात्मक शैलियों का व्यवहार किया है। आलोचना, भाषा-विज्ञान, भाषा का इतिहास, लिपि का विकास आदि विषयों पर इन्होंने वैज्ञानिक एवं सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया है।

प्रस्तुत निबंध '**भारतीय साहित्य की विशेषताएँ**' में लेखक ने भारतीय साहित्य की अनेक विशेषताओं का वर्णन किया है। पहली विशेषता समन्वय की है। भारतीय दर्शन में परमात्मा तथा जीवात्मा में कोई अन्तर नहीं माना जाता। लेखक के अनुसार इसी दार्शनिक मान्यता के आधार पर कला व साहित्य में समन्वय का आदर्श प्रमुख बना। दूसरी विशेषता धार्मिक भावों की प्रचुरता है। इस दूसरी विशेषता के कारण लौकिक जीवन की अनेकरूपता प्रदर्शित न हो सकी। इन दो मुख्य विशेषताओं के अतिरिक्त देश की जलवायु और भौगोलिक स्थिति का भी साहित्य पर प्रभाव पड़ता है। जातिगत तथा देशगत विशेषताओं की ओर लेखक ने ध्यान आकृष्ट करते हुए इनका प्रभाव साहित्य के भावपक्ष एवं कलापक्ष पर स्पष्ट किया है। सम्पूर्ण निबंध में लेखक ने आलोचनात्मक दृष्टि अपनायी है।

●●●

# भारतीय साहित्य की विशेषताएँ

समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता, उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है। उसकी यह विशेषता इतनी प्रमुख तथा मार्मिक है कि केवल इसी के बल पर संसार के अन्य साहित्यों के सामने वह अपनी मौलिकता की पताका फहरा सकता है और अपने स्वतंत्र अस्तित्त्व की सार्थकता प्रमाणित कर सकता है। जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भारत के ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के समन्वय की प्रसिद्धि है तथा जिस प्रकार वर्ण और आश्रम-चतुष्टय के निरूपण द्वारा इस देश में सामाजिक समन्वय का सफल प्रयास हुआ है, ठीक उसी प्रकार साहित्य तथा अन्यान्य कलाओं में भी भारतीय प्रवृत्ति समन्वय की ओर रही है। साहित्यिक समन्वय से हमारा तात्पर्य साहित्य में प्रदर्शित सुख-दुःख, उत्थान-पतन, हर्ष-विषाद आदि विरोधी तथा विपरीत भावों के समीकरण तथा एक अलौकिक आनन्द में उनके विलीन होने से है। साहित्य के किसी अंग को लेकर देखिए, सर्वत्र यही समन्वय दिखायी देगा। भारतीय नाटकों में ही सुख और दुःख के प्रबल घात-प्रतिघात दिखाये गये हैं, पर सबका अवसान आनन्द में ही किया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि भारतीयों का ध्येय सदा से जीवन का आदर्श स्वरूप उपस्थित करके उसका उत्कर्ष बढ़ाने और उसे उन्नत बनाने का रहा है। वर्तमान स्थिति से उसका इतना सम्बन्ध नहीं है, जितना भविष्य की संभाव्य उन्नति से है। हमारे यहाँ पाश्चात्य प्रणाली के दुखांत नाटक इसीलिए नहीं दीख पड़ते। यदि आजकल दो-चार नाटक ऐसे दीख भी पड़ने लगे हैं, तो वे भारतीय आदर्श से दूर और पाश्चात्य आदर्श के अनुकरण-मात्र हैं। कविता के क्षेत्र में ही देखिए। यद्यपि विदेशी शासन से पीड़ित तथा अनेक क्लेशों से संतप्त देश निराशा की चरम सीमा तक पहुँच चुका था और उसके सभी अवलम्बों की इतिश्री हो चुकी थी, फिर भी भारतीयता के सच्चे प्रतिनिधि तत्कालीन महाकवि गोस्वामी तुलसीदास अपने विकार-रहित हृदय से समस्त जाति को आश्वासन देते हैं—

**''भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवध चितवन चितई है,**
**सानन्द सुनि विनती हेरि हँसि करुना वारि भूमि भिजई है।**
**रामराज भयो काज सगुन सुभ राजा राम जगत-विजई है,**
**समरथ बड़ो सुजान सुसाहब सुकृति-सेन हारत जितई है।''**

आनन्द की कितनी महान् भावना है। चित्त किसी अनुभूत आनन्द की कल्पना में मानो नाच उठता है। हिन्दी साहित्य के विकास का समस्त युग विदेशीय तथा विजातीय शासन का युग था; परन्तु फिर भी साहित्यिक समन्वय का भी निरादर नहीं हुआ। आधुनिक युग के हिन्दी कवियों में यद्यपि पाश्चात्य आदर्शों की छाप पड़ने लगी है और लक्षणों को देखते हुए इस छाप के अधिकाधिक गहरी हो जाने की सम्भावना हो रही है, तथापि जातीय साहित्य की धारा अक्षुण्ण रखनेवाले कुछ कवि अब भी वर्तमान हैं।

यदि हम थोड़ा-सा विचार करें तो उपर्युक्त साहित्यिक समन्वयवाद का रहस्य हमारी समझ में आ सकता है। जब हम थोड़ी देर के लिए साहित्य को छोड़कर भारतीय कलाओं का विश्लेषण करते हैं तब उनमें भी साहित्य की भाँति समन्वय की छाप दिखायी पड़ती है। सारनाथ की बुद्ध भगवान् की मूर्ति उस समय की है, जब वे छह महीने की कठिन साधना के उपरान्त अस्थिपंजर-मात्र ही रहे होंगे, पर मूर्ति में कहीं कृशता का पता नहीं; उसके चारों ओर एक स्वर्गीय आभा नृत्य कर रही है।

इस प्रकार साहित्य में भी तथा कला में भी एक प्रकार का आदर्शात्मक साम्य देखकर उसका रहस्य जानने की इच्छा और प्रबल हो उठती है। हमारे दर्शन-शास्त्र हमारी जिज्ञासा का समाधान कर देते हैं। भारतीय दर्शनों के अनुसार परमात्मा तथा जीवात्मा में कुछ भी अन्तर नहीं, दोनों एक ही हैं, दोनों सत्य हैं, चेतन हैं तथा आनन्दस्वरूप हैं। बंधन मायाजन्य है। माया अज्ञान उत्पन्न करनेवाली वस्तु है। जीवात्मा मायाजन्य अज्ञान को दूर कर अपना स्वरूप पहचानता है और आनन्दमय परमात्मा

में लीन होता है। आनन्द में विलीन हो जाना ही मानव-जीवन का परम उद्देश्य है। जब हम इस दार्शनिक सिद्धांत का ध्यान रखते हुए उपर्युक्त समन्वय पर विचार करते हैं, तब सारा रहस्य हमारी समझ में आ जाता है तथा इस विषय में और कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

भारतीय साहित्य की दूसरी बड़ी विशेषता उसमें धार्मिक भावों की प्रचुरता है। हमारे यहाँ धर्म की बड़ी व्यापक व्यवस्था की गयी है और जीवन के अनेक क्षेत्रों में उसको स्थान दिया गया है। धर्म में धारण करने की शक्ति है, अतः केवल अध्यात्म-पक्ष में ही नहीं, लौकिक आचार-विचार तथा राजनीति तक में उसका नियंत्रण स्वीकार किया गया है। मनुष्य के वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन को ध्यान में रखते हुए अनेक सामान्य तथा विशेष धर्मों का निरूपण किया गया है। वेदों के एकेश्वरवाद, उपनिषदों के ब्रह्मवाद तथा पुराणों के अवतारवाद और बहुदेववाद की प्रतिष्ठा जन-समाज में हुई है और तदनुसार हमारा धार्मिक दृष्टिकोण भी अधिकाधिक विस्तृत तथा व्यापक हो गया है। हमारे साहित्य पर धर्म की इस अतिशयता का प्रभाव दो प्रधान रूपों में पड़ा। आध्यात्मिकता की अधिकता होने के कारण हमारे साहित्य में एक ओर तो पवित्र भावनाओं और जीवन-सम्बन्धी गहन तथा गम्भीर विचारों की प्रचुरता हुई और दूसरी ओर साधारण लौकिक भावों तथा विचारों का विस्तार अधिक नहीं हुआ। प्राचीन वैदिक साहित्य से लेकर हिन्दी के वैष्णव-साहित्य तक में हम यही बात पाते हैं। सामवेद की मनोहारिणी तथा मृदु गंभीर ऋचाओं से लेकर सूर तथा मीरा आदि की सरस रचनाओं तक में सर्वत्र परोक्ष भावों की अधिकता तथा लौकिक विचारों की न्यूनता देखने में आती है।

उपर्युक्त मनोवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि साहित्य में उच्च विचार तथा पूत भावनाएँ तो प्रचुरता से भरी गयीं, परन्तु उनमें लौकिक जीवन की अनेकरूपता का प्रदर्शन न हो सका। हमारी कल्पना अध्यात्म-पक्ष में तो निस्सीम तक पहुँच गयी; परन्तु ऐहिक जीवन का चित्र उपस्थित करने में वह कुछ कुंठित-सी हो गयी है। हिन्दी की चरम उन्नति का काल भक्ति-काव्य का काल है, जिसमें उसके साहित्य के साथ हमारे जातीय साहित्य के लक्षणों का सामंजस्य स्थापित हो जाता है।

धार्मिकता के भाव से प्रेरित होकर जिस सरल तथा सुन्दर साहित्य की सृष्टि हुई, वह वास्तव में हमारे गौरव की वस्तु है; परन्तु समाज में जिस प्रकार धर्म के नाम पर अनेक दोष घुस जाते हैं तथा गुरुडम की प्रथा चल पड़ती है, उसी प्रकार साहित्य में भी धर्म के नाम पर पर्याप्त अनर्थ होता है, हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में हम यह अनर्थ दो मुख्य रूपों में देखते हैं, एक तो साम्प्रदायिक कविता तथा नीरस उपदेशों के रूप में और दूसरा कृष्ण का आधार लेकर की गयी हिन्दी की शृंगारी कविताओं के रूप में। हिन्दी में साम्प्रदायिक कविता का एक युग ही हो गया है और 'नीति के दोहों' की तो अब तक भरमार है। अन्य दृष्टियों से नहीं तो कम-से-कम शुद्ध साहित्यिक समीक्षा की दृष्टि से ही सही, साम्प्रदायिक तथा उपदेशात्मक साहित्य का अत्यन्त निम्न स्थान है; क्योंकि नीरस पदावली के कोरे उपदेशों में कवित्व की मात्रा बहुत थोड़ी होती है। राधाकृष्ण को लेकर हमारे शृंगारी कवियों ने अपने कलुषित तथा वासनामय उद्गारों को व्यक्त करने का जो ढंग निकाला वह समाज के लिए हितकर नहीं हुआ, यद्यपि आदर्श की कल्पना करनेवाले कुछ साहित्यिक समीक्षक इस शृंगारी कविता में भी उच्च आदर्शों की उद्भावना कर लेते हैं, पर फिर भी हम वस्तुस्थिति की किसी प्रकार अवहेलना नहीं कर सकते। सब प्रकार की शृंगारिक कविता ऐसी नहीं है कि उसमें शुद्ध प्रेम का अभाव तथा कलुषित वासनाओं का ही अस्तित्त्व हो, पर यह स्पष्ट है कि पवित्र भक्ति का उच्च आदर्श, आगे चलकर लौकिक शरीर-जन्य तथा वासना-मूलक प्रेम में परिणत हो गया।

भारतीय साहित्य की इन दो प्रधान विशेषताओं का उपर्युक्त विवेचन करके अब हम उसकी दो-एक देशगत विशेषताओं का वर्णन करेंगे। प्रत्येक देश की जलवायु अथवा भौगोलिक स्थिति का प्रभाव उस देश के साहित्य पर अवश्य पड़ता है और यह प्रभाव बहुत-कुछ स्थायी भी होता है। संसार के सब देश एक ही प्रकार के नहीं होते। जलवायु तथा गर्मी-सर्दी के साधारण विभेदों के अतिरिक्त उनके प्राकृतिक दृश्यों तथा उर्वरता आदि में भी अंतर होता है। यदि पृथिवी पर अरब तथा सहारा जैसी दीर्घकाय मरुभूमियाँ हैं तो साइबेरिया तथा रूस के विस्तृत मैदान भी हैं। यदि यहाँ इंग्लैण्ड तथा आयरलैण्ड जैसे जलावृत द्वीप हैं तो चीन जैसा विस्तृत भूखण्ड भी है। इन विभिन्न भौगोलिक स्थितियों का उन देशों के साहित्यों से जो सम्बन्ध होता है; उसी को इस साहित्य की देशगत विशेषताएँ कहते हैं।

भारत की शस्यश्यामला भूमि में जो निसर्ग-सिद्ध सुषमा है, उस पर भारतीय कवियों का चिरकाल से अनुराग रहा है। यों तो प्रकृति की साधारण वस्तुएँ भी मनुष्यमात्र के लिए आकर्षक होती हैं, परन्तु उसकी सुन्दरतम विभूतियों में मानव वृत्तियाँ विशेष प्रकार से रमती हैं। अरब के कवि मरुस्थल में बहते हुए किसी साधारण से झरने अथवा ताड़ के लंबे-लंबे पेड़ों में ही

सौन्दर्य का अनुभव कर लेते हैं तथा ऊँटों की चाल में ही सुन्दरता की कल्पना कर लेते हैं; परन्तु जिन्होंने भारत की हिमाच्छादित शैलमाला पर संध्या की सुनहली किरणों की सुषमा देखी है; अथवा जिन्हें घनी अमराइयों की छाया में कल-कल ध्वनि से बहती हुई निर्झरिणी तथा उसकी समीपवर्तिनी लताओं की वसन्तश्री देखने का अवसर मिला है, साथ ही जो यहाँ के विशालकाय हाथियों की मतवाली चाल देख चुके हैं, उन्हें अरब की उपर्युक्त वस्तुओं में सौन्दर्य तो क्या, उलटे नीरसता, शुष्कता और भद्दापन ही मिलेगा। भारतीय कवियों को प्रकृति की सुन्दर गोद में क्रीड़ा करने का सौभाग्य प्राप्त है। वे हरे-हरे उपवनों तथा सुन्दर जलाशयों के तटों पर विचरण करते तथा प्रकृति के नाना मनोहारी रूपों से परिचित होते हैं। यही कारण है कि भारतीय कवि प्रकृति के संश्लिष्ट तथा सजीव चित्र जितनी मार्मिकता, उत्तमता तथा अधिकता से अंकित कर सकते हैं तथा उपमा-उत्प्रेक्षाओं के लिए जैसी सुन्दर वस्तुओं का उपयोग कर सकते हैं; वैसा रूखे-सूखे देश के निवासी कवि नहीं कर सकते। यह भारत-भूमि की ही विशेषता है कि यहाँ के कवियों का प्राकृतिक-वर्णन तथा तत्संभव सौन्दर्य-ज्ञान उच्च कोटि का होता है।

प्रकृति के रम्य रूपों में तल्लीनता की जो अनुभूति होती है उसका उपयोग कविगण कभी-कभी रहस्यमयी भावनाओं के संचार में भी करते हैं। यह अखंड भूमण्डल तथा असंख्य ग्रह, उपग्रह, रवि-शशि अथवा जल, वायु, अग्नि, आकाश कितने रहस्यमय तथा अज्ञेय हैं? इनके सृष्टि-संचालन आदि के सम्बन्ध में दार्शनिकों अथवा वैज्ञानिकों ने जिन तत्त्वों का निरूपण किया है, वे ज्ञानगम्य अथवा बुद्धिगम्य होने के कारण नीरस तथा शुष्क हैं। काव्य-जगत् में इतनी शुष्कता तथा नीरसता से काम नहीं चल सकता, अतः कविगण बुद्धिवाद के चक्कर में न पड़कर व्यक्त प्रकृति के नाना रूपों में एक अव्यक्त किन्तु सजीव सत्ता का साक्षात्कार करते तथा उसमें भावमग्न होते हैं। इसे हम प्रकृति-सम्बन्धी रहस्यवाद का एक अंग मान सकते हैं। प्रकृति के विविध रूपों में विविध भावनाओं के उद्रेक की क्षमता होती है, परन्तु रहस्यवादी कवियों को अधिकतर उसके मधुर स्वरूप से प्रयोजन होता है, क्योंकि भावावेश के लिए प्रकृति के मनोहर रूपों की जितनी उपयोगिता है, उतनी दूसरे रूपों की नहीं होती। यद्यपि इस देश की उत्तरकालीन विचारधारा के कारण हिन्दी में बहुत थोड़े रहस्यवादी कवि हुए हैं, परन्तु कुछ प्रेम-प्रधान कवियों ने भारतीय मनोहर दृश्यों की सहायता से अपनी रहस्यमयी उक्तियों को अत्यधिक सरस तथा हृदयग्राही बना दिया है। यह भी हमारे साहित्य की एक देशगत विशेषता है।

ये जातिगत तथा देशगत विशेषताएँ तो हमारे साहित्य के भावपक्ष की हैं। इनके अतिरिक्त उसके कलापक्ष में भी कुछ स्थायी जातीय मनोवृत्तियों का प्रतिबिम्ब अवश्य दिखायी देता है। कलापक्ष से हमारा अभिप्राय केवल शब्द-संगठन अथवा छन्द-रचना तथा विविध आलंकारिक प्रयोगों से नहीं है, प्रत्युत उसमें भावों को व्यक्त करने की शैली भी सम्मिलित है। यद्यपि प्रत्येक कविता के मूल में कवि का व्यक्तित्त्व निहित रहता है और आवश्यकता पड़ने पर उस कविता के विश्लेषण द्वारा हम कवि के आदर्श तथा उसके व्यक्तित्त्व से परिचित हो सकते हैं। परन्तु साधारणतः हम देखते हैं कि कुछ कवियों में प्रथम पुरुष एकवचन के प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक होती है तथा कुछ कवि अन्य पुरुष में अपने भाव प्रकट करते हैं।

अंग्रेजी में इस विभिन्नता के आधार पर कविता के व्यक्तिगत तथा अव्यक्तिगत नामक भेद हुए हैं, परन्तु ये विभेद वास्तव में कविता के नहीं उसकी शैली के हैं। दोनों प्रकार की कविताओं में कवि के आदर्शों का अभिव्यंजन होता है, केवल इस अभिव्यंजन के ढंग में अन्तर रहता है। एक में वे आदर्श आत्मकथन अथवा आत्मनिवेदन के रूप में व्यक्त किये जाते हैं, दूसरी में उन्हें व्यंजित करने के लिए वर्णनात्मक प्रणाली का आधार ग्रहण किया जाता है। भारतीय कवियों में दूसरी (वर्णनात्मक) शैली की अधिकता तथा पहली की कमी पायी जाती है। यही कारण है कि यहाँ वर्णनात्मक काव्य अधिक है तथा कुछ भक्त कवियों की रचनाओं के अतिरिक्त उस प्रकार की कविता का अभाव है जिसे गीति-काव्य कहते हैं और जो विशेषकर पदों के रूप में लिखी जाती है।

साहित्य के कलापक्ष की अन्य महत्त्वपूर्ण जातीय विशेषताओं से परिचित होने के लिए हमें उसके शब्द-समुदाय पर ध्यान देना पड़ेगा। साथ ही भारतीय संगीत-शास्त्र की कुछ साधारण बातें भी जान लेनी होंगी। वाक्य रचना के विविध भेदों, शब्दगत तथा अर्थगत अलंकारों और अक्षर, मात्रिक अथवा लघु मात्रिक आदि छन्द-समुदायों का विवेचन भी उपयोगी हो सकता है, परन्तु एक तो ये विषय इतने विस्तृत हैं कि इन पर यहाँ विचार करना सम्भव नहीं। दूसरे इनका सम्बन्ध साहित्य के इतिहास से उतना अधिक नहीं है जितना व्याकरण, अलंकार और पिंगल से है। तीसरी बात यह भी है कि इनमें जातीय विशेषताओं की कोई स्पष्ट छाप भी नहीं दीख पड़ती, क्योंकि ये सब बातें थोड़े बहुत अन्तर से प्रत्येक देश के साहित्य में पायी जाती हैं।

**—श्यामसुन्दरदास**

# अभ्यास प्रश्न

## ➥ गद्यांश पर आधारित प्रश्न

**1.** निम्नलिखित गद्यांशों को पढ़कर उनके नीचे दिये गये प्रश्नों के उत्तर लिखिए—

**(क)** समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता, उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है। उसकी यह विशेषता इतनी प्रमुख तथा मार्मिक है कि केवल इसी के बल पर संसार के अन्य साहित्यों के सामने वह अपनी मौलिकता की पताका फहरा सकता है और अपने स्वतंत्र अस्तित्व की सार्थकता प्रमाणित कर सकता है। जिस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भारत के ज्ञान, भक्ति तथा कर्म के समन्वय की प्रसिद्धि है तथा जिस प्रकार वर्ण और आश्रम-चतुष्टय के निरूपण द्वारा इस देश में समाजिक समन्वय का सफल प्रयास हुआ है, ठीक उसी प्रकार साहित्य तथा अन्यान्य कलाओं में भी भारतीय प्रवृत्ति समन्वय की ओर रही है। साहित्यिक समन्वय से हमारा तात्पर्य साहित्य में प्रदर्शित सुख-दुःख, उत्थान-पतन, हर्ष-विषाद आदि विरोधी तथा विपरीत भावों के समीकरण तथा एक अलौकिक आनन्द में उनके विलीन होने से है। साहित्य के किसी अंग को लेकर देखिए, सर्वत्र यही समन्वय दिखायी देगा। भारतीय नाटकों में ही सुख और दुःख के प्रबल घात-प्रतिघात दिखाये गये हैं, पर सबका अवसान आनन्द में ही किया गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि भारतीयों का ध्येय सदा से जीवन का आदर्श स्वरूप उपस्थित करके उसका उत्कर्ष बढ़ाने और उसे उन्नत बनाने का रहा है। वर्तमान स्थिति से उसका इतना सम्बन्ध नहीं है, जितना भविष्य की संभाव्य उन्नति से है।

**प्रश्न–** (i) उपर्युक्त गद्यांश के पाठ एवं लेखक का नाम लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश में रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) भारतीय साहित्य की सबसे प्रमुख विशेषता क्या है?
(iv) साहित्यिक समन्वय से लेखक का क्या तात्पर्य है?
(v) सभी भारतीय नाटक सुखान्त क्यों होते हैं?

**(ख)** इस प्रकार साहित्य में भी तथा कला में भी एक प्रकार का आदर्शात्मक साम्य देखकर उसका रहस्य जानने की इच्छा और प्रबल हो उठती है। हमारे दर्शन-शास्त्र हमारी जिज्ञासा का समाधान कर देते हैं। भारतीय दर्शनों के अनुसार परमात्मा तथा जीवात्मा में कुछ भी अन्तर नहीं, दोनों एक ही हैं, दोनों सत्य हैं, चेतन हैं तथा आनन्दस्वरूप हैं। बंधन मायाजन्य है। माया अज्ञान उत्पन्न करनेवाली वस्तु है। जीवात्मा मायाजन्य अज्ञान को दूर कर अपना स्वरूप पहचानता है और आनन्दमय परमात्मा में लीन होता है। आनन्द में विलीन हो जाना ही मानव-जीवन का परम उद्देश्य है। जब हम इस दार्शनिक सिद्धांत का ध्यान रखते हुए उपर्युक्त समन्वय पर विचार करते हैं, तब सारा रहस्य हमारी समझ में आ जाता है तथा इस विषय में और कुछ कहने-सुनने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

**प्रश्न–** (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश में रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) जीवात्मा और परमात्मा में क्या भेद है?
(iv) जीवात्मा का बंधन कैसे होता है?
(v) मानव-जीवन का परम उद्देश्य क्या है?

**(ग)** भारतीय साहित्य की दूसरी बड़ी विशेषता उसमें धार्मिक भावों की प्रचुरता है। हमारे यहाँ धर्म की बड़ी व्यापक व्यवस्था की गयी है और जीवन के अनेक क्षेत्रों में उसको स्थान दिया गया है। धर्म में धारण करने की शक्ति है, अतः केवल अध्यात्म-पक्ष में ही नहीं, लौकिक आचार-विचार तथा राजनीति तक में उसका नियंत्रण स्वीकार किया गया है। मनुष्य के वैयक्तिक तथा

सामाजिक जीवन को ध्यान में रखते हुए अनेक सामान्य तथा विशेष धर्मों का निरूपण किया गया है। वेदों के एकेश्वरवाद, उपनिषदों के ब्रह्मवाद तथा पुराणों के अवतारवाद और बहुदेववाद की प्रतिष्ठा जन-समाज में हुई है और तदनुसार हमारा धार्मिक दृष्टिकोण भी अधिकाधिक विस्तृत या व्यापक हो गया है। हमारे साहित्य पर धर्म की इस अतिशयता का प्रभाव दो प्रधान रूपों में पड़ा। आध्यात्मिकता की अधिकता होने के कारण हमारे साहित्य में एक ओर तो पवित्र भावनाओं और जीवन-सम्बन्धी गहन तथा गम्भीर विचारों की प्रचुरता हुई और दूसरी ओर साधारण लौकिक भावों तथा विचारों का विस्तार अधिक नहीं हुआ। प्राचीन वैदिक साहित्य से लेकर हिन्दी के वैष्णव-साहित्य तक में हम यही बात पाते हैं।

**प्रश्न–** (i) उपर्युक्त गद्यांश के पाठ एवं लेखक का नाम लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश में रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) लेखक ने भारतीय साहित्य की दूसरी बड़ी विशेषता क्या बताया है?
(iv) आचार-विचार तथा राजनीति में धर्म का नियन्त्रण क्यों स्वीकार किया गया है?
(v) हमारे साहित्य में धर्म की अतिशयता का क्या प्रभाव पड़ा?

**(घ)** भारत की शस्यश्यामला भूमि में जो निसर्ग-सिद्ध सुषमा है, उस पर भारतीय कवियों का चिरकाल से अनुराग रहा है। यों तो प्रकृति की साधारण वस्तुएँ भी मनुष्यमात्र के लिए आकर्षक होती हैं, परन्तु उसकी सुन्दरतम विभूतियों में मानव वृत्तियाँ विशेष प्रकार से रमती हैं। अरब के कवि मरुस्थल में बहते हुए किसी साधारण से झरने अथवा ताड़ के लंबे-लंबे पेड़ों में ही सौन्दर्य का अनुभव कर लेते हैं तथा ऊँटों की चाल में ही सुन्दरता की कल्पना कर लेते हैं; परन्तु जिन्होंने भारत की हिमाच्छादित शैलमाला पर संध्या की सुनहली किरणों की सुषमा देखी है; अथवा जिन्हें घनी अमराइयों की छाया में कल-कल ध्वनि से बहती हुई निर्झरिणी तथा उसकी समीपवर्तिनी लताओं की वसन्तश्री देखने का अवसर मिला है, साथ ही जो यहाँ के विशालकाय हाथियों की मतवाली चाल देख चुके हैं,उन्हें अरब की उपर्युक्त वस्तुओं में सौन्दर्य तो क्या, उलटे नीरसता, शुष्कता और भद्दापन ही मिलेगा। भारतीय कवियों को प्रकृति की सुन्दर गोद में क्रीड़ा करने का सौभाग्य प्राप्त है। वे हरे-हरे उपवनों तथा सुन्दर जलाशयों के तटों पर विचरण करते तथा प्रकृति के नाना मनोहारी रूपों से परिचित होते हैं।

**प्रश्न–** (i) उपर्युक्त गद्यांश का सन्दर्भ लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश में रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) विशेष प्रकार की मानव वृत्तियाँ कहाँ रमती हैं?
(iv) अरब देश के कवि किन वस्तुओं को देखकर सुन्दरता की कल्पना कर लेते हैं?
(v) गद्यांश के अनुसार प्रकृति की सुन्दर गोद में क्रीड़ा करने का सौभाग्य किन्हें प्राप्त है?

**(ङ)** प्रकृति के रम्य रूपों में तल्लीनता की जो अनुभूति होती है उसका उपयोग कविगण कभी-कभी रहस्यमयी भावनाओं के संचार में भी करते हैं। यह अखंड भूमण्डल तथा असंख्य ग्रह, उपग्रह, रवि-शशि अथवा जल, वायु, अग्नि, आकाश कितने रहस्यमय तथा अज्ञेय हैं? इनके सृष्टि-संचालन आदि के सम्बन्ध में दार्शनिकों अथवा वैज्ञानिकों ने जिन तत्त्वों का निरूपण किया है, वे ज्ञानगम्य अथवा बुद्धिगम्य होने के कारण नीरस तथा शुष्क हैं। काव्य-जगत् में इतनी शुष्कता तथा नीरसता से काम नहीं चल सकता, अतः कविगण बुद्धिवाद के चक्कर में न पड़कर व्यक्त प्रकृति के नाना रूपों में एक अव्यक्त किन्तु सजीव सत्ता का साक्षात्कार करते तथा उसमें भावमग्न होते हैं। इसे हम प्रकृति-सम्बन्धी रहस्यवाद का एक अंग मान सकते हैं। प्रकृति के विविध रूपों में विविध भावनाओं के उद्रेक की क्षमता होती है, परन्तु रहस्यवादी कवियों को अधिकतर उसके मधुर स्वरूप से प्रयोजन होता है, क्योंकि भावावेश के लिए प्रकृति के मनोहर रूपों की जितनी उपयोगिता है, उतनी दूसरे रूपों की नहीं होती।

**प्रश्न–** (i) उपर्युक्त गद्यांश के पाठ एवं लेखक का नाम लिखिए।
(ii) प्रस्तुत गद्यांश में रेखांकित अंश की व्याख्या कीजिए।
(iii) कविगण किसमें भावमग्न होते हैं?
(iv) लेखक के अनुसार रहस्यवाद क्या है?
(v) प्रकृति के रम्य रूपों में तल्लीनता की जो अनुभूति है, उसका उपयोग कविगण किसमें करते हैं?

## ➥ दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. श्यामसुन्दरदास की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।
2. श्यामसुन्दरदास को हिन्दी भाषा के प्रमुख उन्नायकों में क्यों गिना जाता है? तर्कसंगत उत्तर दीजिए।
3. श्यामसुन्दरदास का साहित्यिक परिचय दीजिए।
4. श्यामसुन्दरदास के जीवन-परिचय पर प्रकाश डालिए।
5. श्यामसुन्दरदास की कृतियों का उल्लेख करते हुए उनका साहित्यिक परिचय लिखिए।
6. श्यामसुन्दरदास का जीवन-परिचय व रचनाएँ लिखकर उनकी भाषा-शैली की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
7. 'भारतीय साहित्य की विशेषताएँ' पाठ का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
8. निम्नलिखित सूक्तिपरक पंक्तियों की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए—
   (क) समस्त भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता उसके मूल में स्थित समन्वय की भावना है।
   (ख) आनन्द में विलीन हो जाना ही मानव-जीवन का परम उद्देश्य है।
   (ग) धर्म में धारण करने की शक्ति है।
   (घ) कविता के मूल में कवि का व्यक्तित्व निहित रहता है।

## ➥ लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

*अथवा* श्यामसुन्दरदास के अनुसार भारतीय साहित्य की दो प्रधान विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

2. साहित्यिक समन्वय से लेखक का क्या तात्पर्य है?
3. निम्नलिखित शब्दों का आशय स्पष्ट कीजिए—
   जातीय साहित्य, देशगत साहित्य, सामान्य तथा विशेष धर्म।
4. प्रस्तुत निबंध के आधार पर श्यामसुन्दरदास की गद्य-शैली की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
5. निम्नलिखित शब्दों में समास बताइए :
   घात-प्रतिघात, वसन्त-श्री, सृष्टि-संचालक।
6. "भारतीय साहित्य में हित का भाव सर्वोपरि है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
7. भारतीय साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता क्या है? स्पष्ट कीजिए।
8. साहित्यिक समन्वय से लेखक का क्या तात्पर्य है?
9. "भारतीय साहित्य में धार्मिक भावनाओं की प्रचुरता है।" इसका आशय स्पष्ट कीजिए।
10. भारतीय साहित्य की वह कौन-सी विशेषता है जो उसे अन्य देशों के साहित्य से भिन्न करती है?
11. भारतीय नाटकों का अवसान आनन्द में ही क्यों किया जाता है?
12. भारतीय साहित्य में प्रकृति का प्रभाव किन-किन रूपों में दृष्टिगत होता है?

●●●